ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol.-6* Issue-4* May- 2021
Innovation The Research Concept

जाति और भारतीय राजनीति – एक अध्ययन

Caste and Indian Politics - A Study

Paper Submission: 02/05/2021, Date of Acceptance: 14/05/2021, Date of Publication: 25/05/2021

मनोज कुमार वर्मा
सहायक प्राध्यापक,
राजनीति विज्ञान विभाग,
सन्त गणिनाथ राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
मुहम्मदाबाद गोहना –मऊ
उत्तर प्रदेश, भारत

भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका स्वतंत्रता पूर्व औपनिवेशिक काल से ही रही है किन्तु स्वतंत्रता पश्चात चुनावी राजनीति में यह अधिक मुखर हुई। जाति को भारतीय राजनीति के प्रमुख निर्धारक तत्वों में गिना जाता है। राजनीति में जातिवाद को एक नकारात्मक पहलू के रूप में देखा जाता है किन्तु कुछ विद्वान राजनीति में जाति को सामाजिक न्याय की प्राप्ति में सहायक और वंचित जातियों के लिए शासन और राजनीति में उचित स्थान दिलाने वाला मानते हैं। किन्तु अन्य संकीर्णताओं की तरह जातिवाद भी लोकतंत्र के लिए खतरनाक है। लगभग सभी राजनीतिक पार्टियाँ चुनाव में जाति को बढ़ावा देने की प्रवृत्ति की आलोचना करते हैं किन्तु टिकट देते वक्त वे जाति को घ्यान में रखकर प्रत्याशियों का चयन करते हैं। चुनावों में भाग लेने और उसे प्रभावित करने के अलावा जाति का प्रयोग राजनीति में सही और गलत लाभों के लिए भी किया जाता है। जातिवाद का राजनीति में प्रवेश सामाजिक वैमनस्यता को बढ़ा रहा है और यह आधुनिक भारत की निर्माण–प्रक्रिया को नकारात्मक रूप में प्रभावित कर रहा है।

The role of caste in Indian politics has been there since the pre-independence colonial period, but after independence it became more prominent in electoral politics. Caste is counted among the major determinants of Indian politics. Casteism is seen as a negative aspect in politics, but some scholars consider caste in politics to be helpful in achieving social justice and giving proper place in governance and politics for the deprived castes. But casteism, like other narrow-mindedness, is also dangerous for democracy. Almost all political parties criticize the tendency to promote caste in elections, but while giving tickets, they select candidates keeping caste in mind. Apart from participating in and influencing elections, caste is also used in politics for both right and wrong benefits. The entry of casteism into politics is increasing social disharmony and it is negatively affecting the manufacturing process of modern India.

मुख्य शब्द : जाति, राजनीतिक आधुनिकीकरण, चुनाव, राजनीतिक दल, संविधान। Caste, Political Modernization, Election, Political Party, Constitution

प्रस्तावना

भारत की सामाजिक व्यवस्था में जाति एक महत्वपूर्ण तत्व है जो सभी क्षेत्रों को प्रभावित करती है। इसका प्रभाव भारतीय राजनीति पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। वयस्क मताधिकार पर आधारित भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की चुनावी राजनीति में जाति एक प्रभावकारी तत्व साबित हुई है। भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण के शुरूआत के साथ यह माना जा रहा था कि भारतीय राजनीति में जातिवाद का अंत हो जाएगा किन्तु स्वतंत्रता पश्चात भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका उत्तरोत्तर बढ़ती गई। जयप्रकाश नारायण का विचार है ''जाति भारत में एक सबसे महत्वपूर्ण राजनीतिक दल के रूप में कार्य कर रही है।''

अध्ययन के उद्देश्य

1. भारतीय राजनीति पर जाति के प्रभावों का विश्लेषण करना।
2. भारत में जाति आधारित राजनीति के प्रमुख प्रतिमानों की समीक्षा करना।
3. भारतीय राजनीति में जाति के प्रवेश के मुख्य कारणों का पता लगाना।
4. राजनीति में जातिवाद बढ़ने से भारतीय लोकतन्त्र के स्वरूप में क्या परिवर्तन हुआ है, इसका विश्लेषण करना।

5. जाति आधारित राजनीति को बढ़ावा देने में राजनीतिक दलों की भूमिका का परीक्षण करना।

भारतीय राजनीति में जाति का प्रभाव इस रूप में प्रमुखता से देखा जा सकता है कि राजनीतिक दल निर्वाचन क्षेत्रों के लिए प्रत्याशियों का चयन इस आधार पर करते हैं कि कहाँ पर किस जाति के मतदाताओं की संख्या अधिक है। हर राजनीतिक दल का झुकाव किसी न किसी जाति या जातियों की ओर देखा जाता है। चुनाव पश्चात सरकार गठन में भी जातिगत समीकरणों का ध्यान रखा जाता है। जाति विशेष के मतदाताओं का विश्वास जीतने के लिए अपराधी प्रवृत्ति के भ्रष्ट नेताओं को भी मंत्रिमण्डल में स्थान मिल जाता है। नीति–निर्माण में भी जातियों को केन्द्र में रखकर निर्णय लिये जाते हैं।

जाति–व्यवस्था भारतीय समाज का परम्परागत पक्ष है। स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात संविधान और राजनीतिक संस्थाओं के निर्माण से आधुनिक प्रभावों ने भारतीय समाज में धीरे–धीरे प्रवेश करना प्रारम्भ कर दिया। आधुनिक प्रभावों के फलस्वरूप वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचन प्रारम्भ हुए और जातिगत संस्थाएं यकायक महत्वपूर्ण बन गयीं क्योंकि उनके पास भारी संख्या में मत थे और लोकतंत्र में सत्ता प्राप्ति हेतु मतों का मूल्य था। जिन्हें सत्ता की अकांक्षा थी, उन्हें सामान्य जनता के पास पहुँचने के लिए सम्पर्क के लिए यह भी जरूरी था कि उनसे उस भाषा में बात की जाए जो उनकी समझ में आ सके। जाति–व्यवस्था इस बात को प्रकट करती थी। इस पृष्ठभूमि में जाति की भूमिका राजनीति में अधिकाधिक महत्वपूर्ण होती गई। (फड़िया, पृष्ठ – 480)

जाति के राजनीतिकरण की विशेषताएं

भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका की निम्नलिखित विशेषताएं परिलक्षित होती हैं–

1. जाति व्यक्तियों को जोड़कर रखने वाली एक कड़ी है। जातीय संघों और जातिगत संगठनों ने जातीय राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं में वृद्धि की है। यहाँ तक कि जाति को समाप्त करने के लिए चलाए गए आन्दोलन अन्ततोगत्वा नयी जातियों के रूप में मुखरित हुए जैसे कबीरपंथी, लिगांयत, सिक्ख आन्दोलन आदि।
2. शिक्षा, शहरीकरण, तकनीकी विकास और आधुनिकीकरण से जातियाँ समाप्त नहीं हुई अपितु उनमें एकीकरण की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला और उनकी राजनीति में भूमिका बढ़ गई।
3. राजनीति में जातीय गोलबन्दी से जातियों को कुछ सुविधाएं व लाभ प्राप्त हुए।
4. जाति और राजनीति के संबंध स्थैतिक न होकर गतिशील हैं। (जौहरी, पृ0 71)
5. जाति की भूमिका स्थानीय और राज्य राजनीति में अधिक है जबकि राष्ट्रीय राजनीति में अपेक्षाकृत कम।
6. चुनावों के दौरान जातीय संगठन प्रस्ताव पारित कर विशेष राजनीतिक दलों या नेताओं को अपने जातिगत समर्थन की घोषणा कर अपने जातीय हितों को मुखरित करते हैं।
7. राजनीति में प्रधान जाति (Dominant caste) की भूमिका का विश्लेषण आसानी से किया जा सकता है।

प्रधान जाति आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से शक्तिशाली होने के साथ ही संख्या में भी अधिक होती है। संख्या बल और आर्थिक स्थिति के आधार पर प्रधान जाति का स्थानीय संस्थाओं जैसे पंचायतों आदि पर वर्चस्व स्थापित हो जाता है। यदि किसी राज्य में किसी जाति विशेष की प्रधानता होती है तो राज्य की राजनीति में जाति एक प्रभावक तत्व के रूप में कार्य करने लगती है, प्रधान जाति के अलावा अन्य जातियां भी जातीय गुटबंदी में लग जाती हैं और राजनीति में अपनी भूमिका तलाशने लगती हैं। हरियाणा की राजनीति के बारे में डॉ0 सुभाष कश्यप ने लिखा है– ''हरियाणा में जाति और वर्ग की भावना को अपेक्षाकृत अधिक बल मिला है तथा हरियाणा के जनजीवन में सदा ही जाति राजनीतिक दल की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण रही है। ..... गुडगाँव और महेन्द्रगढ़ क्षेत्रों का अहीर, अहीर उम्मीदवार को ही मत देना चाहेगा अन्य किसी को नहीं। ..... यही बात राज्य के अन्य भागों के अन्य जाति के समूहों के बारे लागू होती है। चुनावों के समय यहाँ अक्सर एक पुरजोर नारा सुनाई पड़ता है– जाट की बेटी जाट को जाट का वोट जाट को। आश्चर्य की बात यह है कि जाति की यह छूत हिन्दुओं तक ही सीमित नहीं मुसलमान भी उनकी गिरफ्त से नहीं बच सकें। (कश्यप, पृ0 112–13)

जाति–राजनीति के प्रादेशिक प्रतिमान

राष्ट्रीय राजनीति की तुलना में राज्यों की राजनीति में जातिवाद का प्रभाव कुछ अधिक और विशेष ढंग का दिखाई देता है। कुछ विचारकों के अनुसार भारत के विभिन्न राज्यों में जाति–राजनीति के चार विभिन्न प्रतिमान विकसित हुए हैं–

जाति–राजनीति का पहला प्रतिमान दक्षिण भारत विशेषकर तमिलनाडु में देखने को मिलता है जहाँ ब्राह्मणों और निम्न जातियों के बीच गम्भीर संघर्ष रहा है। तमिलनाडु की राजनीति में शुरूआत से ब्राह्मणों का वर्चस्व रहा। इसके विरूद्ध रामास्वामी नायकर ने द्रविड आन्दोलन की शुरूआत की जिसका उद्देश्य गैर ब्राह्मण जातियों के हितों को विकसित करना व सुरक्षित रखना था जिसको सी0एम0 अन्नादुरै ने डी0 एम0 के0 के बैनर तले आगे बढ़ाया और इसके फलस्वरूप तमिलनाडु की राजनीति में ब्राह्मणों का प्रभुत्व समाप्त हो गया।

जाति–राजनीति का दूसरा प्रतिमान महाराष्ट्र में देखा जा सकता है। महाराष्ट्र की राजनीति में ब्राह्मणों और मराठों के बीच प्रभुत्व को लेकर संघर्ष रहा और इस संघर्ष में मराठा जाति ने ब्राह्मणों के सदियों चले आ रहे वर्चस्व को समाप्त कर दिया। 1960 में पृथक महाराष्ट्र राज्य की स्थापना से मराठा जाति का पूर्ण प्रभुत्व स्थापित हो गया। ए0जे0 दस्तूर के शब्दों में, ''जिस दिन महाराष्ट्र का निर्माण हुआ, उस दिन इस राज्य के राजनीतिक विशिष्ट वर्ग और राजनीतिक नेतृत्व में अत्यधिक महत्वपूर्ण

और मौलिक परिवर्तन हुए। सत्ता प्रभाव और शक्ति ब्राह्मणों के हाथों से निकलकर मराठों के हाथों में पहुँच गई।'' (दस्तूर, पृ0 188)

गुजरात, आन्ध्र प्रदेश और कर्नाटक जाति–राजनीति के तीसरे प्रतिमान का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस तीनों ही राज्यों में मध्यमवर्गीय जातियाँ राजनीति में संघर्षरत रही हैं। आन्ध्र प्रदेश में कम्मा और रेड्डी जातियों के बीच राजनीति में वर्चस्व को लेकर संघर्ष दिखता है। साम्यवादी दल का नेतृत्व कम्मा जाति के हाथ में और कांग्रेस पार्टी में रेड्डी जाति का प्रभुत्व रहा है। कर्नाटक की राजनीति में यह संघर्ष लिंगायत और ओक्कालिंगा जातियों के बीच पाया जाता है। गुजरात में पाटीदार और क्षत्रिय जातियों के बीच राजनीतिक प्रतिस्पर्द्धा दिखती है। इन तीनों राज्यों की राजनीति की विशेषता यह है कि इन राज्यों की राजनीति में ऐसी दो जातियों का प्रभुत्व है जो सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से एक दूसरे के समान हैं जबकि महाराष्ट्र और तमिलनाडु की राजनीति में दो असमान जातियों के बीच प्रतिस्पर्द्धा पायी जाती है।

जाति–राजनीति का चौथा प्रतिमान बिहार जैसे राज्य में देखने को मिलता है जहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य कायस्थ जैसी ऊँची जातियाँ ही राजनीतिक क्षेत्र में प्रभुत्वशाली हैं, इन्हीं के बीच राजनीतिक प्रतिद्वन्द्विता पायी जाती है, पिछड़ी व दलित जातियाँ राजनीतिक क्षेत्र में उभरने का प्रयत्न कर रही हैं। राजस्थान और मध्यप्रदेश में भी राजनीति में उच्च जातियों का ही एकाधिकार है। अतः इन राज्यों में राजनीतिक प्रतियोगिता उच्च जातियों के बीच है।

राजनीति में जाति की भूमिका– सकारात्मक या नकारात्मक

भारतीय राजनीति में जाति को राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में बाधक माना जाता है क्योंकि इससे व्यक्तियों में अलगाव की भावना पैदा होती है। लोगों में राष्ट्रीय हितों के बजाय जातिगत हितों के प्रति निष्ठा को बढ़ावा मिलता है, ऐसा होना लोकतंत्र के लिए घातक होता है।

पिछले सात दशकों के दौरान सामाजिक व आर्थिक परिदृश्य से जहाँ जाति का प्रभाव कम हो रहा है, वहीं राजनीति में इसे बढ़ावा मिल रहा है। जाति, हिंसा व आरक्षण के द्वन्द्व से उभरते ध्रुवीकरण वाले नये जाति आधारित संगठन सामने आ रहे हैं। जाति ने अपने को देश के आर्थिक–राजनीतिक ढांचे में अन्तःस्थापित कर लिया है। यूनिवर्सल एडल्ट फ्रेन्चाइजी में लोकतन्त्र अपनाये जाने के साथ निरक्षर व राजनीतिक रूप से अधिक जागरूक नहीं रहने वालों, जो आर्थिक कार्यक्रमों, जाति, धर्म जैसे समुदाय सम्बन्धी जुड़ाव के सम्बन्ध में राजनीति को समझ सकते हैं। जाति–व्यवस्था ने इसलिए लोकतन्त्र के फ्रेमवर्क में राजनीतिक समाजीकरण, संग्रहण तथा संस्थानीकरण की दिशा व वस्तु के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी शुरू कर दी है। (नारंग, योजना, पृ0 18)

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय राजनीति में जाति की दोहरी भूमिका रही है, सकारात्मक तथा नकारात्मक। सकारात्मक पक्ष में निम्न तथा पिछड़ी जातियों ने स्वयं को संगठित कर चुनावों में भाग लेकर अपने लिए सामाजिक न्याय प्राप्त करने की उपलब्धि की है। इन्होंने लोकतंत्र में चुनावों, दबाव समूहों तथा गठबन्धनों के साधनों का प्रयोग समाज तथा राजनीति में अपने उचित स्थान को प्राप्त करने के लिए किया है। निस्संदेह उच्च जातियाँ तथा यथास्थिति में विश्वास रखने वाले इस प्रक्रिया की यह कह कर आलोचना करते हैं कि चुनावों में जाति का उपयोग अनुचित है। दूसरी ओर उच्च जातीय वर्गों ने स्वयं जाति के नकारात्मक पक्ष का उपयोग मतदाताओं को विभाजित रखने, श्रमिक आन्दोलनों को कमजोर करने तथा वर्गीय चेतना को संगठित होने से रोकने के लिए किया है। (नारंग, पृ0 385)

लायड रूडोल्फ तथा सूजन रूडोल्फ का यह मानना है कि भारत की जाति व्यवस्था ने राजनीतिक जागरूकता और विभिन्न जातियों के राजनीतिकरण में सहयोग दिया है। रूडोल्फ का कहना है – ''अपने परिवर्तित रूप में जाति ने भारत के कृषक समाज में प्रतिनिधिक जनतंत्र की सफलता तथा भारतीयों की आपसी दूरी को कम करके उन्हें अधिक समान बनाकर समानता के विकास में सहायता दी है। (रूडोल्फ, एण्ड रूडोल्फ, पृ0 11) इसी दृष्टिकोण का समर्थन भारतीय लेखक रजनी कोठारी ने भी किया है। भारतीय राजनीति और जातिवाद के पारस्परिक सम्बन्धों के विषय में रजनी कोठारी का कहना है कि ''वे लोग जो भारतीय राजनीति में जातिवाद के विद्यमान होने की शिकायत करते हैं, वह एक ऐसी राजनीति की कल्पना करते हैं जो समाज में सम्भव नहीं है। वास्तव में जिसे राजनीति में जातिवाद कहा जाता है, वह जातियों के राजनीतिकरण से अधिक और कुछ नहीं है (कोठारी, पृ0 4)

उपर्युक्त दृष्टिकोण के विपरीत कुछ ऐसे विचारक हैं जो भारतीय राजनीति में जाति की नकारात्मक भूमिका पर चिंता व्यक्त करते हैं। उनका मानना है कि जाति ने भारतीयों के मतदान व्यवहार को नकारात्मक रूप में प्रभावित किया है जिससे भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की क्रियाशीलता में रूकावट आई है। एम0एन0 श्रीनिवास का कहना है कि ''परम्परावादी जाति व्यवस्था ने प्रगतिशील और आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था को इस तरह प्रभावित किया है कि ये राजनीतिक संस्थाएं अपने मूल रूप में कार्य करने में समर्थ नहीं हैं।'' (श्रीनिवास, पृ02) डी0आर0 गाडगिल ने भी जातिवाद को राष्ट्रीय एकीकरण के लिए हानिकारक मानते हुए कहा है कि क्षेत्रीय दबावों से कहीं ज्यादा खतरनाक बात यह है कि वर्तमान काल में जाति व्यक्तियों को एकता के सूत्र में बाधने में बाधक सिद्ध हुई है। (गाडगिल, पृ0 102)

भारतीय राजनीति में जातिवाद का महत्वपूर्ण कारण मनोवैज्ञानिक भी कहा जा सकता है। परम्परावादी सामाजिक व्यवस्था में राजनीतिक और धार्मिक कार्य मे समाज में उच्च जातियों का एकाधिकार था और प्रत्येक जाति के कार्य जन्मतः निर्धारित होते थे। कार्यों को लेकर विभिन्न जातियों के बीच कोई प्रतियोगिता न थी। वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था ने समानता के सिद्धान्त को अपनाकर

राजनीतिक पदों को सामान्य कर दिया। परिणाम यह हुआ कि राजनीतिक पदों को प्राप्त करने के लिए सभी जातियों के लोग प्रयत्नशील हुए और उच्च जातियों को अपने परम्परावादी एकाधिकार खत्म होने से कुछ दुःख अवश्य हुआ। इससे उनमें निम्न जातियों के प्रति ईर्ष्या की भावना पैदा हुई। दूसरी ओर निम्न जाति के लोगों में शताब्दियों से उच्च जातियों के द्वारा कुचले जाने के कारण बदले की भावना का होना कोई आश्यर्य की बात नहीं है। संक्षेप में, भारत में स्वतंत्रता के बाद जातिवाद द्विमार्गीय व्यवस्था बन कर रह गया है। उच्च और निम्न जातियों की इस मनोदशा (उच्च जातियों में खोई हुई प्रतिष्ठा की याद और निम्न जातियों में उन पर किये गए अत्याचारों के कारण, बदला लेने की भावना) के कारण भारतीय समाज और राजनीति से जातिवाद को संविधान के मंतव्य के अनुसार समाप्त करना असान नहीं है। इस स्थिति में सुधार केवल कानूनी उपबन्धों के द्वारा संभव नहीं, जब तक उसके अनुरूप मानसिक परिवर्तन न हो क्योंकि कानून तथा दण्ड का भय मनुष्य के बाह्य आचरण को नियंत्रित कर सकता है, उसके विचारों और भावनाओं को नहीं । (सईद, पृ0 452–53)

निष्कर्ष

भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण का एक महत्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि भारतीय समाज में जातियों के बीच संघर्ष और प्रतिस्पर्द्धा पहले से अधिक बढ़ गयी। औद्योगिकीकरण, नगरीकरण, वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप बहुत थोड़े लोगों की सोच में परिवर्तन आया है। संचार और परिवहन के साधनों के विकास से फलस्वरूप विभिन्न जातियाँ एक दूसरे के समीप आई है किन्तु व्यक्तिगत और राजनीतिक जीवन में जातियाँ मजबूती से बनी हुई है। अतः कह सकते हैं कि जाति की शक्तियाँ आधुनिकीकरण के बावजूद कमजोर पड़ने के बजाय और अधिक ताकतवर होती जा रही हैं। जातीय चेतना का उभार राजनीति में जाति की भूमिका और महत्व को लगातार बढ़ाने में सहायक साबित हुआ है, जो भारतीय लोकतन्त्र और सामाजिक समरसता के लिए घातक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *फड़िया, बी0एल0: भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 2016, पृ0 480*
2. *जौहरी, जे0सी0: रेफ्लेक्शन्स ऑन इण्डियन पॉलिटिक्स, एस0 चन्द, 1974, पृ0 3.*
3. *कश्यप, सुभाष,: दल–बदल और राज्यों की राजनीति, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, पृ0 112–13*
4. *दस्तूर, ए0जे0: दि पैटर्न ऑफ महाराष्ट्र पॉलिटिक्स, इकबाल नारायण (सं0), स्टेट पॉलिटिक्स इन इण्डिया, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 1967, पृ0 188*
5. *नारंग, ए0एस0, योजना, हिन्दी मासिक, अक्टूबर 2017, पृ0 18*
6. *नारंग, ए0एस0: भारतीय शासन एवं राजनीति, गीतांजलि पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2005, पृ0 385*
7. *रूडोल्फ, लायड आई0 एण्ड एस0 हाबर रूडोल्फः दि माडर्निटी ऑफ ट्रेडीशन, ओरियंट लांगमैन, 1969, पृ011*
8. *कोठारी, रजनीः कास्ट इन इण्डियन पालिटिक्स, ओरियट लांगमैन, दिल्ली, 1970, पृ0 4*
9. *श्रीनिवास, एम0एन0: सेमिनार (दिल्ली), जून 1965, पृ0 2*
10. *गाडगिल, डी0 आर0: इण्डिया– दि मोस्ट डेंजरस डिकेट्स, पृ0 102*
11. *सईद, एस0 एम0: भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, भारत बुक सेन्टर, लखनऊ, पृ0 452–53*